SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

गाँधी की दृष्टि में औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण

सुधा कुमारी, Ph.D., इतिहास
मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
सुधा कुमारी, Ph.D.

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 20/06/2023
Revised on : -----
Accepted on : 27/06/2023
Plagiarism : 01% on 20/06/2023

शोध सार

प्रस्तुत शोध पत्र ''गाँधी की दृष्टि में औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण'' एक समसामयिक विषय है। आज भागदौड़ के जीवन में मानव की प्रकृति बन गई है कि कैसे अधिक–से–अधिक धन कमाया जाय। स्वाभाविक है कि इस सोच को व्यवहारिक रूप देने के लिए हम भौतिकवादी और मशीनीकरण व्यवस्था के साथ अपने आप को जोड़ना होगा। हम वेतहाशा की तरह उत्पादन को बाजार उपलब्ध कराकर अपने आप को आर्थिक रूप से मजबूत कर सके। इस होड़ में हम सभी इसके दूसरे पक्ष जिसे हमारा पर्यावरण प्रभावित हो सकता या होता है उसे दरकिनार कर देते हैं, जो हमारे लिए और अपने आने वाली पीढ़ी के लिए खतरे से कम नहीं है। इस शोध पत्र में इन्ही प्रमुख बिन्दुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया हैं। आज हम सब विविध क्षेत्रों में कहीं–न–कहीं से पर्यावरण संतुलन के प्रति उदासीन हैं, जिसे गाँधी की दृष्टि में रखकर देखने समझने एवं पाठकों के लिए प्रस्तुत करने का कोशिश किया गया है।

मुख्य शब्द

सभ्यता, संस्कृति, औद्योगिक विकास, पर्यावरण, हिन्द स्वराज, अध्यात्मिक क्रांति.

भूमिका

भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में महात्मा गाँधी का प्रवेश तथा उनकी इस क्षेत्र में सक्रिय भागीदारी को इतिहासकारों ने मुख्य रूप से शुद्ध राजनीति के दृष्टिकोण से ही वर्णित एवं विश्लेषित किया है। महात्मा गाँधी की भूमिका के प्रति इतिहासकारों का यह शुद्ध राजनीतिक दृष्टिकोण इन दिनों प्रबुद्ध चिंतकों के द्वारा एकांगी माना जा रहा है और यह बात धीरे–धीरे जोर पकडती जा रही है कि महात्मा गाँधी ने भारतीय राष्ट्रीय राजनीति को कभी भी पश्चिम की शुद्ध राजनीतिक

चिंतनधारा के तहत् नहीं देखा बल्कि उसे भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की सपूर्ण एवं सर्वांगीण विचारधारा के अन्तर्गत देखा तथा उसे तदनुरूप ढालने की कोशिश की। इस संदर्भ में उनके विविध आयामों से समन्वित भारतीय राष्ट्रीय दृष्टिकोण के तहत विभिन्न मुद्दों की चर्चा चिंतकों ने की है, जिनमें पर्यावरण के प्रति उनकी गहरी चिंता को आज के संदर्भ में प्राथमिकता से देखा जा रहा है। चूँकि आज हमारा पर्यावरण मनुष्य जाति के लिए एक अहम चुनौति बनकर उठ खड़ा हुआ है, इसलिए पर्यावरण से संबंधित वैज्ञानिकों तथा अन्य की चिंता हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सवाल बनकर उठ खड़ा हुआ है। ऐसी स्थिति में हमारा ध्यान निश्चित रूप से महात्मा गाँधी की पर्यावरणीय सोच के प्रति मुखातिब होता है जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय राजनीति जैसे महत्वपूर्ण विषय को पर्यावरणीय सोच से समन्वित करने की प्राथमिक भूमिका निभाई। चूँकि पर्यावरण मुख्य रूप से औद्योगिकीकरण से सीधा संबंध रखता है, इसलिए प्रस्तुत लेख से महात्मा गाँधी की पर्यावरणीय सोच एवं चिंता को औद्योगिकीकरण का साथ जोड़कर देखने की चेष्टा की गयी है।

महात्मा गाँधी ने 1909 में ही अपने हिन्द स्वराज में इस बात का संकेत कर दिया था कि औद्योगिकीकरण तथा उससे उत्पन्न पर्यावरणीय संकट सभ्यता एवं संस्कृति के क्षेत्र में मनुष्य मात्र के लिए एक विनाश की शुरूआत है और शायद इसी संदर्भ में स्पेंगलर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'डेक्लाइन ऑफ दि वेस्ट' की रचना और उसमें पश्चिमी सभ्यता की बुराईयों के प्रति अपना दृष्टिकोण जाहिर किया।[1] महात्मा गाँधी ने अपनी इस चिंता को अपनी दूसरी कृति 'मेरे सपनों का भारत'[2] में इसके विभिन्न अध्यायों में अभिव्यक्त किया है, यथा, 'उद्योगवाद का अभिशाप' (अध्याय 7) 'गाँवों की ओर' (अध्याय 23), 'ग्राम स्वराज' (अध्याय 24) 'ग्रामोद्योग (अध्याय 26) तथा 'गाँवों का अरोग्य' एवं 'गाँवो कर आहार' (अध्याय 35–36)।

औद्योगिकीकरण के अभिशाप एवं पर्यावरणीय संकट के प्रति महात्मा गाँधी की उपर्युक्त चिंताओं को पर्यावरणीय आंदोलन से संबंधित सक्रिय कायकर्त्ताओं ने पर्यावरण के लिए बीज आंदोलन के रूप में देखा है।[3]

इसके पूर्व कि महात्मा गाँधी की औद्योगिकीकरण एवं पर्यावरणीय–संबंधी चिंतन को थोडा विस्तार कसे वर्णित एवं विश्लेषित करें, हमें एक नजर पर्यावरणीय संकट तथा औद्योगिकीकरण के अभिशाप पर डालनी चाहिए। लगभग सभी चिंतकों ने इस बात के प्रति गहरी चिंता जतायी है कि आधुनिक युग में वैज्ञानिक शोधो के फलरूवरूप औद्योगिकीकरण का जिस तेजी से एकागी विकास हुआ है उसने पर्यावरण को काफी गहराई से न सिर्फ प्रदूषित किया है, बल्कि हमारी प्रकृति को इस तरह का दोहन किया है कि प्रकृति एवं मानव के जीवन–रक्षण एवं वर्द्धन के लिए जो तालमेल हुआ था वह पूरी तरह टूट गया है। हमारी नदियाँ, हमारी मिट्टी, हमारे जंगल और यहाँ तक कि हमारी सोच इस हद तक प्रदूषित एवं विकृत हो गयी है कि हमारा अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। कहा जा रहा है कि पर्यावरणीय असंतुलन विद्रूपण के कारण, जिसमें मुख्य भूमिका रासायनिक एवं औद्योगिक कचड़े की है, हमारा समुद्र शीघ्र ही पूरी तरह दैत्य की भांति निगलने के लिए तैयार हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव श्री बुट्रोसघाली ने चेतावनी दी है कि अगर पर्यावरणीय संकट एवं औद्योगिकरण से उत्पन्न उपभोक्ता की दानवी प्रकृति पर अगर अंकुश नहीं लगाया गया तो विश्व शीघ्र ही तृतीय विश्वयृद्ध की विभीषिका में जलभुन जायेगा और सबसे बड़ी बात यह है कि यह युद्ध पानी के प्रश्न पर उत्पन्न होगा, जिसका मुख्य कारण है औद्योगिकीकरण एवं पर्यावरणीय असंतुलन होना। इसी चिंता को विश्व बैंक के उपाध्यक्ष इनमेल सेराग्लेडीन के कथन में भी गूँजती देखा जा सकता है जिसमें कहा गया है कि कोई भ्रम में न रहे, सामान्य पानी की कमी सभी शहरों को प्रभावित करेगी तथा युद्ध आगे की सदी में जल को लेकर विवाद के कारण लड़ा जायेगा। भारतवर्ष में विभिन्न राज्यों में दिन–प्रतिदिन जल–विवाद गहरा ही होता जा रहा है।

पर्यावरण की इस संकट को, जिसे गाँधी जी ने 1909 में ही भाँप लिया था, उन्होंने अपने आगे के लेखों एवं चिंतनधाराओं में इसका बार–बार उपयोग किया और हमें इस बात के प्रति आगाह किया कि पश्चिमी औद्योगिकीकरण के अंधाधुन अनुकरण से वे भारत को बचाना चाहते थे और भारत के लिए जिस राष्ट्रीय स्वतंत्रता की बात कर रहे थे वह सिर्फ राजनीतिक ही नहीं बल्कि एक आध्यात्मिक क्रांति की स्वतंत्रता थी जिसमें पर्यावरणीय संतुलन का उतना

ही स्थान था जितना राजनीतिक स्वतंत्रता का। इतना ही नहीं गाँधीजी ने अपनी पर्यावरणीय चिंता को भारत के लिए ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व की मानवता के लिए जरूरी समझा और औद्योगिकीकरण के विकल्प के रूप में गाँधी का ग्राम स्वराज है जहाँ उन्होंने हमारे समक्ष यह विकल्प रखा था कि पर्यावरणीय संतुलन को ध्यान में रखते हुए शहरों में उन चीजों को अंधाधुंध उत्पादन की अनुमति नहीं दी जाएगी जो गाँव में ही पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखते हुए उत्पादित की जा सकती थी।[4] अनेक चिंतकों एवं विचारकों ने जब गाँधी की इस अवधारणा पर प्रश्न उठाया कि इससे उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं का उत्पादन संभव नहीं हो सकेगा तो उन्होंने बेबाक ढंग से उत्तर में लिखा था कि जब गाँव अपने अपने ढंग से पर्यावरणीय संतुलन को बनाते हुए अपने आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन करने में लग जायेंगे तो गुणवत्तापूर्ण वस्तुओं एवं कलात्मक प्रतिभाओं का अकाल नहीं होगा।[5]

प्रश्न यह उठता कि गाँधीजी क्यों बार–बार हमें औद्योगिकीकरण के खतरों से सचेत कर रहे थे और क्यों मानवीय पहलुओं से भरपूर पर्यावरणीय संतुलन के साथ विकास का रास्ता दिखला रहे थे। इस संदर्भ में एक विचार दर्शनिक विश्लेकषक अकील बिलग्रामी की ओर से आया है। अपने प्रसिद्ध निबंध, गाँधी, न्यूटन एण्ड दि एनलाइटेनमेंट'' में उन्होंने इस बात पर जार दिया है कि आधुनिक युग में जब विज्ञान विकसित हो रहा था तो उसकी सोच प्रकृति के दोहण पर चली गयी जिसने यह बात पूरी तरह लोगों के मस्तिष्क में भरी कि प्रकृति या पर्यावरण सिर्फ और सिर्फ मनुष्य के उपयोग के लिए है कि इसके लिए विज्ञान के रास्ते उसका जितना दोहन कर लिया जाए वह मनुष्य के लिए उपयोगी होगा। विज्ञान की इस सोच को अकील बिलग्रामी ने 'थिक नोशन' ऑफ साइंटिफिक रेशनलिटी यानि वैज्ञानिक बुद्धि की 'मोटी सोच' बतलाया है। इसके विपरीत उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि भारतीय चिंतनधारा ने, जो युगों की अनुभावाश्रित संचित सूक्ष्म बुद्धि पर आधारित थी, इस बात को तार लिया था कि प्रकृति के साथ तालमेल करके ही एक सुंदर, स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन जीया जा सकता है। उस पर विजय प्राप्त करके या उसका दोहन करके नहीं। इस बात को महात्मा गाँधी ने बखूबी समझा और अपने हिन्द स्वराज तथा ग्राम स्वराज में इस बात पर बार–बार जिक्र किया, और यहाँ तक कि इस प्रश्न को उन्होंने अपने पूरे राष्ट्रीय आंदोलन के गंभीरतम क्षणों में भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया।[6] आवश्यकता इस बात की है कि इस बात पर चिंतकों के बीच एक गहरी बहस होनी चाहिए कि अकील बिलग्रामी ने महात्मा गाँधी के हवाले जिस बहस को उठाया है वह कितना प्रासंगिक है। वैसे, अभी तक जो भी लेख या पुस्तक इस संबंध में प्रकाशित हो रहे हैं उससे इस बात की सूचना मिल रही है कि जिस ढंग से पर्यावरणीय एवं औद्योगिक संकट ने हमें विनाश के कगार की ओर ढकेलना शूरू कर दिया है उसमें सभी प्रबुद्ध चिंतक इस बात को मानने लगे हैं कि महात्मा गाँधी ने एकांगी और दानवी औद्योगिकीकरण के खिलाफ जो मुहिम भारतीय राष्ट्रीय निर्माण के दौरान छेड़ा, वह न सिर्फ भारत के लिए आज बेहद प्रासंगिक है बल्कि पूरे विश्व के लिए उसकी नितांत आवश्यकता है इसीलिए संयुक्त राष्ट्रसंघ ने गाँधी को अपने आदर्श के रूप में स्वीकार किया है और पूरा प्रबुद्ध मानव समाज इसी भाव–भंगिमा के साथ अपनी सहमति जता रहा है।[7]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जब हम गाँधी की दृष्टि में औद्योगिकीकरण एवं पर्यावरण पर सोचने–विचारने एवं लिखने के लिए उद्यृत होते हैं तो निम्नलिखित बातें हमारे समक्ष प्रमुखता से उभरकर आती है– पहली बात तो यह है कि महात्मा गाँधी ने भारतीय राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक चिंतनधारा के अंतर्गत व्यापत विचारों को आत्मसात करके प्रकृति एवं मनुष्य दोनों के प्रति एक संतुलित विचारधारा निर्मित की थी और इसी विचारधारा के अंतर्गत उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय चेतना को विकसित किया तथा एक नए भारत का निर्माण अतीत की सुदृढ़ नींव पर करने की ठानी और वास्तविक तौर पर उसका क्रियान्वित रूप भी हमारे समक्ष रखा। इस संदर्भ में भारतीय जीवन एवं चिंतनधारा से मिलती–जुलती कुछ पश्चिमी विचारों की विचारधाराओं को उन्होंने आत्मसात किया, लेकिन मूलतः वे भारतीय संस्कृति की अथर्ववेद में चर्चित 'पृथ्वी सूक्त' से प्रभावित थे जिसमें प्रकृति के साथ संघर्ष नहीं बल्कि संतुलन एवं समन्वय की चर्चा की गयी है।[8] हालांकि इरफान हबीब जैसे इतिहासकारों ने महात्मा गाँधी के विचार एवं चिंतन पर समीक्षात्मक अध्ययन करते हुए पश्चिमी प्रभाव को भारतीय संदर्भ से ज्यादा प्रभावी माना है।[9]

दूसरी बात यह कि पर्यावरण एवं औद्योगिकीकरण की चिंता को गाँधी ने अभिव्यक्त किया है उसके आधार पर ही बाद के पर्यावरणीय कार्यकर्त्ताओं ने अपने आंदोलन को और सशक्त बनाया है, हालांकि रामचंद्र गुहा ने इस बात पर एतराज जताया है कि सिर्फ और सिर्फ गाँधी ही पर्यावरणीय चिंता के पुरोधा नहीं रहे हैं बल्कि और भी कई व्यक्ति एवं संस्थाएँ स्वतंत्र रूप से इस चिंता को लेकर अपनी लेखनी उठायी है यह इस संबंध में सक्रिय भागीदारी दी है।[10]

तीसरी बात यह है कि महात्मा गाँधी ने पश्चिमी सभ्यता के संदर्भ में पल्लिवत एवं पुष्पित जिस दानवी औद्योगिकीकरण की विनाशक प्रवृति की ओर हमारा ध्यान दिलाया था और जिस पर्यावरणीय असंतुलन एवं विद्रूपण के प्रति हमें सचेत किया था वह आज एक गंभीर यक्ष प्रश्न बनकर हमारे समक्ष खड़ा है अगर उसका उचित निदान नहीं किया गया तो निश्चित ही हमारी मानवता ध्वस्त हो जायेगी।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आज पूरे विश्व का पर्यावरण प्रदूषित हो चुका है। आधुनिक मानव भौतिक प्रगति के उच्चतम सोपानों को संस्पर्श करने की लालसा में प्राकृतिक मर्यादाओं का निरन्तर अतिक्रमण करता जा रहा है। आज प्रकृति का प्रकोप भूकंप, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, पादपग्रह प्रभाव, जैव विविधता क्षय, फैलते रेगिस्तान व सिकुड़ते वन के रूप में प्रकट हो रहा है। आधुनिक मशीनी युग में तकनीक एवं विज्ञान उत्पीड़न एवं दोहन के उपकरण बन गए हैं। यद्यपि मानव तकनीक एवं विज्ञान के बगैर नहीं रह सकता है। गाँधीजी का मानना था कि, ''हमारी जीवन पद्धति ऐसी हो कि पर्यावरण को कम–से–कम ठेस पहुँचे।'' उनकी दृष्टि में औद्योगिक विकास के साथ–साथ मनुष्य को कल–कारखानों में अधिक से अधिक वृक्षों को लगाने की सलाह दी है। आज हम इस भौतिकीवादी युग में पेड़ों की कटाई कर उस स्थान पर कारखानों को स्थापित कर रहे हैं। इसलिए यह जरूरी है कि प्रकृति में संतुलन कायम रखने के लिए वृक्षारोपण करे ताकि पर्यावरण को क्षरण होने से बचाया जा सके।

संदर्भ सूची

1. गाँधी, महात्मा, *''हिन्द स्वराज''* अध्याय, सभ्यता के दर्शन तथा मशीने, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वर्धा, महाराष्ट्र, 1954 पृ.– 37,93।
2. गाँधी, महात्मा, *''मेरे सपनों का भारत''* नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1990।
3. गुहा, रामचन्द्र, ''महात्मा गाँधी एण्ड दि इनभारन्मेंटल मूवमेंट'' (संपादित ए रघुराम राजू) डिबेटिंग गाँधी ए रीडर, ऑक्सफोर्ड युनिर्वसिटी प्रेस 2008।
4. गाँधी, महात्मा, *''हरिजन''* 26 जनवरी, 1946।
5. पूर्वोक्त, 10 नवम्बर, 1946।
6. अकील बिलग्रामी, गाँधी, ''न्यूटन एण्ड दि एनलाइटेनमेंट'' *सोशल साइटिस्ट,* 390–396 व उप न. 5–6 मई–जून 2006, पृ. 17–35।
7. सिन्हा, मनोज (सं), *''गाँधी अध्ययन''* ओरियंट लोंगमैन, नई दिल्ली, 2008 पृ 150–161।
8. द्विवेदी, ओ.पी. एवं त्रिवेदी नीलम *''सूक्त एण्ड एनवायर्नमेंटल स्टिवाडशिप'',* नई दिल्ली 2007।
9. हबीब, इरफान, ''गाँधी एण्ड दि नेशलन मूवमेंट'', *सोशल साइंटिस्ट* 263–265 वा 23 न. 4–6 अप्रैल–जून 1995, पृ. 3–15।
10. गुहा, रामचन्द्र, ''महात्मा गाँधी एण्ड दि इनवारन्मेंटल मूवमेंट'' सं. रघुराम राजू डिबेटिंग गाँधी ए रीडर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस– 2006।

****